© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

श्रमविभाजन का उन्नतस्वरूप–वर्णव्यवस्था

डॉ मोनिका,
सहायक आचार्या
मौलिकसिद्धान्तविभाग
डॉ एस. आर.आर. आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर(राजस्थान)

शोधसारांश–भारतीयवर्णव्यवस्था परये आक्षेप प्राप्त होते है कि वर्णव्यवस्था ने समाज को कभी न पाटी जाने वाली परिखा में विभक्त कर दिया जहां एक ओर सर्वोच्च पद पर ब्राह्मण को आसीन कर दिया वहीं दूसरी ओर उनके संरक्षकों के रूप में क्षत्रिय और वैश्य को नियुक्त कर दिया। शोषक वर्ग की इस त्रिपुटी ने भारत की सामाजिक समरसता को ध्वस्त कर दिया और त्रिवर्गेतर जनसमूह का शोषण करके उन्हें दलित बना दिया। प्रस्तुत शोध आलेख में वर्णव्यवस्था के उद्गम, आवश्यकता, वर्णों से अन्य जातियों की उत्पत्ति का परिचय प्रस्तुत करते हुए यह निरूपित किया गया है कि वर्ण महत्ता और हीनता के निर्धारक नहीं अपितु मानवीय सामर्थ्य और कार्यकुशलता का निर्धारक है। यही कारण था कि भारत सदियों तक अपनी इसी थाति के कारण सोने की चिडिया के रूप में विख्यात था। वर्तमान में बढते जातीयसंघर्ष में इस प्रकार के विचारों का अन्वेषण आवश्क है जिसे प्रकृत शोधपत्र में प्रस्तुत किया गया है।

वर्णशब्द का सामान्य अर्थ स्वभाव है। स्वभाव का तात्पर्य प्रवृति या सहजधर्म होता है। प्रायः सभी प्राणियों का स्वभाव अलग–अलग होता है। प्राणियों की यह पृथक्ता उनके भौगोलिक परिवेश और जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शारीरिक एवं मानसिकस्तर तथा दृष्टिकोण पर निर्भर है। इसलिये धर्मशास्त्रों में प्राणियों के श्रम विभाजन वर्णव्यवस्था के रूपमें विवेचित किये गये हैं।

यह ध्यातव्य है कि भारतीयसंस्कृति जीवन को एक दैवीयनिधि के रूप में स्वीकार करती है इसलिये जीवन का उद्गम, ब्रह्मा के ही विस्तार के रूप में स्वीकृत किया गया है। यह भी विचारणीय है कि परमात्मा,ब्रह्मा, आत्मा इत्यादि एक ही तत्त्व के भिन्न–भिन्न अभिधान हैं जो जीवन को आधारभूमि प्रदान करने के साथ ही उसके सूक्ष्मतमांश से लेकर स्थूलतमांश में विद्यमान रहता हुआ सर्गान्त में सभी कुछ आत्मलीन कर लेता है।

वर्णव्यवस्था का उदगम– यह सृष्टि विविधरूपा है अर्थात् यह विविधवर्णा है वैसे तो संसार असीमित वर्ण(प्रकृति) वाला है परन्तु ज्ञानार्जन, रक्षण, अर्थोपार्जन और शिल्पकर्मष्तथा सहयोग, ये चार उद्देश्य मनुष्य के लिये आवश्यक है अतः उक्त चारों को उद्देश्य मेंरखते हुए मनुष्यवर्ग में चार वर्ण निर्धारित

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

किये गये– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा इनकी उनकी उत्पत्ति विराटपुरुष (सृष्टिकारक तत्त्व) के के नाना अवयवों से कल्पित की गई–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।[1]

अर्थात् ब्राह्मण इस विराटपुरुष का मुख, क्षत्रिय इस विराटपुरुष की भुजाएँ, वैश्य इस विराटपुरुष का उदर तथा शूद्र इस विराटपुरुष के पैरों से उत्पन्न हुए। ये चारों अंग, अंगी के निर्माण में आवश्यक है तथा इनमें से किसी एक के भी अभाव में अंगी का स्वरूप अपूर्ण है। ये चारों वर्ण परस्पर एक दूसरे से अविभाजित और एक दूसरे के पूरक हैं। यह मन्त्र चारों वर्णों की समान महत्ता और एकता का प्रतिपादक है। यद्यपि उक्त चारों विभाजन एक ही पुरुषाकृति अंगी के प्रमुख अंग हैं तथापि क्षमता के अनुसार एक ही स्वरूप के भेदक होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को वर्ण कहा गया। वर्णों की यह व्यवस्था जड और चेतन में भी विद्यमान है।

यदि उक्त चारों वर्णों के नामकरण की शाब्दिकव्याख्या की जाये तो भारतीयवर्णव्यवस्था में निहित एकत्व और वर्णव्यवस्था की उदात्तभावना और प्रस्फुट होती है– ब्राह्मण का अर्थ है **ब्रह्मां(ज्ञानं) अधीते वा ब्रह्मां(ज्ञानं) जानाति** अर्थात् जो ज्ञानार्जन में सक्षम है ज्ञान का अधिष्ठान है, वह जाति ब्राह्मण है। क्षत्रिय का अर्थ है–**क्षतात्त्रायते**।अर्थात् जो विविध उपद्रवों से प्राणियों की रक्षा करें वह वर्ण क्षत्रिय है। वैश्य अर्थात् **आजीव्ये विशन्तिइति वैश्य**। इसका तात्पर्य यह है कि जो आजीविका के लिये नाना प्रदेशों में प्रवेश करें वह वर्ण वैश्य है तथा शूद्र का तात्पर्य है **आशु द्रवति** अर्थात् श्रम करने में जो कुशल हो वह शूद्र है। इस प्रकार स्वरुचि और सामर्थ्य के अनुकूल जीवनोपयोगी योग्यता का विभाजन करके एक निर्द्वन्द्व और उन्नत समाज की स्थापना के लिये ष्यह व्यवस्था धर्मशास्त्रों ने प्रदान की ।

वर्णव्यवस्था का आधार–मूलतःवर्णव्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति की योग्यता के अधीन था तथा यह स्वतन्त्रता भी इस बात की द्योतक है कि अपनी क्षमतानुकूल सभी को भिन्न–भिन्न रूप से आत्मविकास करने का अवसर प्राप्त है इस भिन्नता को ही वर्णधर्म के रूप में व्यवस्थित किया गया। ऐसी व्यवस्था आज भी देखी जाती है कि प्रत्येक कार्यशैली या कार्यस्थल की कार्यप्रणाली होती हैं और उसी के आधार पर एक नियमावली बना कर और प्रशिक्षण की व्यवस्था करके कार्य किये जातें हैं। व्यक्तिगतस्तर पर प्राप्त होने वाला यह विकास वैश्विकस्तर पर भी प्रतिक्षण प्राप्त हो रहा है क्योंकि व्यक्ति और समाज का विकास परस्पर सापेक्ष है इसलिये गुण और कर्मविभाजन ही वर्णव्यवस्था का आधार स्वीकृत किया गया है–**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः**।[2]

वर्णव्यवस्था में परिवर्तन–वर्णपरम्परा की यह व्यवस्था ई पू 3शताब्दी तक चलती रही।उसके बाद विदेशी आक्रमणकारियों का दौर आया । यह एक ऐसा संक्रमणकाल था जिसने न केवल भारतीय राजनैतिकव्यवस्था अपितु भारतीयसमाजव्यवस्था को भी प्रभावित किया । लम्बे समय तक वर्णव्यवस्था की कर्मपरकव्यवस्था के स्थान पर वंशपरम्परा से प्राप्त कर्म में कुशलता की अधिक संभावना होती है अतः वर्णव्यवस्था धीरे–धीरे जातिव्यवस्था में परिणत होनेलगी। जाति का शाब्दिक अर्थ है जन्म। जहाँपूर्व में ब्राह्मणक्षत्रियत्वादि विभाजन का आधार व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ थी वहीं पौराणिक काल तक आते आते जिसवर्ण के व्यक्ति की संतति होती , वह संतति उसी जाति की होने लगी। अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय की संतान क्षत्रिय वैश्य की वैश्य तथा शूद्र की शूद्र । किस प्रकार स्वैच्छिक वर्णप्रवृत्ति जन्मबन्धन में बन्दिनी हो गई, जातिव्यवस्था उसका प्रत्यक्षोदाहरण है।

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

नवीन जातियां–जातिव्यवस्था के साथ ही एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया – ब्राह्मणक्षत्रियादि जातियों में परस्पर विवाह। यह परिवर्तन अनुलोम और प्रतिलोम विवाहव्यवस्था के रूप में व्यवस्थित किया गया । अर्थात् ब्राह्मण का क्षत्रिया से , क्षत्रिया का वैश्या से वैश्य का शूद्रा से विवाह इस प्रकार के अनुलोमविवाह को सम्मत ठहराया तथा एक वर्ण को छोडकर हीनवर्ण में विवाह को हेय अथवा वर्णसंकर की श्रेणी में माना गया। उससे भी बढकर ब्राह्मणी और शूद्र, ब्राह्मणी और क्षत्रिय,ब्राह्मणी और वैश्य का प्रतिलोमविवाह अत्यन्त निन्दित माना गया उसमें भी ब्राह्मणी और शूद्र का विवाह तो अत्यन्त कुत्सितकर्म माना गया। उच्चकुल की कन्या और हीनकुल का वर, इस प्रकार का प्रतिलोमविवाह अधर्मकारक माना गया । इस मान्यता के पीछे याज्ञवल्क्य का यह दृष्टिकोण उचित प्रतीत होता है कि संतति पिता के कुल के अनुरूप होती है अतः प्रतिलोम विवाह में ज्ञान के स्तर में न्यूनता आने के कारण इस प्रकार के विवाह समाज को बौद्धिकस्तर पर हीन करते हैं।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाह के कारण चार जातियों के अतिरिक्त और नयी जातियां अस्तित्व में आयी जिनका विवरण मनुस्मृति में इस प्रकार प्राप्त होता है–

वर्ण	जाति	कर्म
ब्राह्मण और असंस्कारित ब्राह्मणी	व्रात्य[3]	अनुष्ठानकर्म,
ब्राह्मण और क्षत्रिया	ब्राह्मण[4]	
ब्राह्मण और वैश्या	अम्बष्ठ[5]	
ब्राह्मण और शूद्रा		
क्षत्रिय और ब्राह्मणी	सूत[7]	रथसंचालन और अश्वशाला नियन्त्रण, अश्वपालन, अश्वविद्या
क्षत्रिय और वैश्या	माहिष्य[4]	
क्षत्रिय और शूद्रा	उग्र[6]	जंगल में रहने वाले जीव जन्तुओ को मारने से आजीविका चलाना
वैश्य और ब्राह्मणी	वैदेहक[7]	अन्तःपुर का रक्षण
वैश्य और क्षत्रिया	मागध[7]	स्थलमार्ग से व्यापार करना
वैश्य और शूद्रा	करण[4]	
शूद्र और ब्राह्मणी	चण्डाल[8]	श्मशानकर्म
शूद्र और क्षत्रिया	क्षत[8]	जंगली जीवों को मारकर जीवन यापन
शूद्र और वैश्या	अयोगव[8]	बढई
व्रात्य और ब्राह्मणी	भूर्जकण्टक, आवन्त्य,	

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

	वाटधान,पुष्पध, शैख[12]– ये जातियां अलग– अलग स्थानों पर निवास करने के कारण हैं।	
व्रात्य (असंस्कारित ब्राह्मण)और क्षत्रिया	झल्ल, मल्ल, निच्छवि,नट, करण, खस ,द्रविड[13]	
व्रात्य और वैश्या	सुधन्वाचार्य, कारुष , विजन्मा, सात्वत[14]	
ब्राह्मण और अम्बष्ठ	आभीर[9]	
ब्राह्मण और अयोगव	धिग्वण[9]	चर्मकार
ब्राह्मण और उग्र	आवृत[9]	
अम्बष्ठ और शूद्रा[5]	निषाद या पारशव[5]	मछुआरे
निषाद और शूद्रा	पुक्कस[10]	आखेटकर्म
शूद्र और निषादिनी	कुक्कुट[10]	आखेटकर्म
क्षत्ता और उग्रा	श्वपाक[11]	वादनकर्म
वैदेह और अम्बष्ठ	वेण[11]	ठठेरा
दस्यु और अयोगवा	सैरन्ध्र[15]	प्रसाधनकर्म
वैदेह और अयोगवा	मैत्रेयक[16]	श्राजमहल में घण्टावादन और स्तुतिगान
निषाद और अयोगव	मार्गव[17]	मल्लाह
निषाद और वैदेही	कारावर[18]	नाई
वैदेहक और निषादिनी	अन्ध्र[19]	शिकारी
वैदेहक और कारावर	भेद[19]	शिकारी
चण्डाल और वैदेही	पाण्डुसोपाक[20]	बंस का काम
निषाद और वैदेही	आहिण्डक[20]	
चाण्डाल और पुक्कस	सेपाक[21]	जल्लाद
चण्डाल और निषादी	अन्त्यवसायी[22]	श्मशानकर्म
करण और माहिष्य	रथकार[23]	रथनिर्माता
दस्यु	पौण्ड्र, चौड्र, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद,पह्लव,चीन, किरात, दरद, खश[24]	

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

इस प्रकार देखा गया कि वर्ण जो गुण और कर्म से अर्जितप्रस्थिति थी वह धीरे–धीरे जन्मार्जितप्रस्थिति में बदलने लगी। इसके अनेक कारण रहें जिनमें अनुलोम और प्रतिलोम विवाह, आचारनियमों में शिथिलता, विदेशी आक्रमण, वैदेशिक सम्बन्ध तथा यागानुष्ठानों का विस्तार आदि प्रमुख कारण रहें ।

शासनसंचालन में जातियों का योगदान– यह भी एक विचारणीय बिन्दु है कि समय–समय पर सत्ता का नेतृत्व विविध वर्णों ने किया जिनमें सर्वाधिक शूद्रवंश का माना जाता है। धनानन्द से पूर्व अनेकशूद्रवंशीय राजाओं ने शासन किया। तत्पश्चात् मुरा नामक दासी के पुत्र चन्द्रगुप्त ने शासन किया और उसे सत्ता पर आधिपत्य ब्राह्मण चाणक्य के सहयोग से किया। चाणक्य ने किसी राजनैतिकपद पर न रहते हुए साधारणजीवन को व्यतीत किया। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने बौद्धधर्म को अंगीकार किया और फिर शासन पुनः बौद्धधर्म के हाथ में आ गया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों ने पुष्यमित्रशुंग के नेतृत्व में शासन किया पुनः गुप्तवंश के रूप में वैश्यों ने भारतभूमि पर शासन किया । ऐतिहासिक दृष्टि से इस सुसंक्षिप्त अवलोकन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष पर समय–समय पर विविध जातियों ने शासन किया है अतः यह तो कदापि नहीं कहा जा सकता कि धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तो के कारण ष्ब्राह्मणक्षत्रियेतरवर्ग को आत्मविकास का समुचित अवसर नहीं मिला।

प्रायः रामायण एवं महाभारत पर वर्णभेद या जातिभेद को फैलाने की कथाओं के प्रमाण प्रस्तुत किये जाते रहें हैं परन्तु रामायण के मूल कथानक में क्षत्रिय और ब्राह्मणवंश एक ही समय में शासन करते चित्रित हुए हैं तथा अपेक्षाकृत हीनवर्ण क्षत्रियराजा राम ब्राह्मणवंशीयराजा रावण का वध करतें हैं। महाभारत में भी प्रायः हीनवर्ग के शोषित के रूप में कर्ण की कथा का उल्लेख प्राप्त होता है जबकि वही सूतपुत्र अंगराज के रूप में अपनी योग्यता से प्रतिष्ठित होता है। अहीरपुत्र कृष्ण राजसूययज्ञ में प्रथज्ञमपूजन का अधिकारी बनता है । क्षत्रियराजा मनु मनुस्मृति का प्रणयन करता है जो ब्राह्मणप्रणीतस्मृतिशास्त्रों के मध्य सर्वप्रमुख स्मृतिग्रन्थ है।

वर्णसंघर्ष के कारण– निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि भारतीय धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार वर्णव्यवस्था का मूल आधार **क्षमता और रुचि के अनुसार श्रमविभाजन है**। कालान्तर में पारिवारिक वातावरण में प्रदत्त संस्कारों के कारण कार्यकुशलता में वृद्धि तथा स्वतः रुचि विकसित होने के कारण एवं स्वाभाविक प्रशिक्षण कर्म की प्राप्ति होने के कारण वर्णपरम्परा को कौलपरम्परा से सम्बद्ध किया गया इससे वर्णपरम्परा जातिपरम्परा के रूप में विकसित हुई। विदेशी आक्रमणों के कारण इसे और अधिक सुदृढ करने के प्रयास में जातिव्यवस्था के नियमों को कठोर किया गया। इसी उपक्रम में योरोपियनजातियों का भारत में आगमन हुआ और उन्हें भारतीयसमाज के रूप में ऐसा अनोखा स्वसंचालित मानवसमूह प्राप्त हुआ जो बिना किसी वैमनस्य के परस्पर सहयोग से भारत को प्रत्येक स्तर पर उन्नत किये हुए थे । ब्राह्मणवर्ग महाराज के रूप में धार्मिक कार्यों एवं शिक्षा–दीक्षा के अनुष्ठानों का निष्पादन करता था वहीं कृषक जजमान के रूप में शस्यसम्पदा का उत्पादन और वितरण का कार्य करता था । व्यापारिक कार्य तथा धन को ऋण पर देने का कार्य बनियावर्ग का था। बढई, दर्जी, लौहार, चर्मकार, जुलाहा आदि जातियां इन तीनों ही वर्गों का सहयोग करती थी। पीढी दर पीढी भारतवर्ष का श्रमकौशल चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर रहा था ।ढाका की मलमल इसका उदाहरण है। योरोपीयन जातियों ने इस समृद्धि के रहस्य को जानने के लिये भारतीयग्रन्थों का अध्ययन किया और उन्हें आश्चर्य हुआ कि जहाँ योरोपीयनजातियां रंगभेद , कुलपरकभेद के कारण एक लडाका

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

और यायावर जीवन को व्यतीत कर रही हैं वहीं भारतवर्ष श्रमविभाजन की इस सौहार्दपूर्ण विभाजन से स्वर्णभूमि के समान समृद्धशली है । बिना इसे विखण्डित किये आर्थिकसमृद्धि सम्भव नहीं है अतः उन्होनें भारतवर्ष की समृद्धि की नींव इस सुदृढजातिव्यवस्था को खण्डित करने के उपक्रम निर्मित करने प्रारम्भ किये । इसी के परिणामस्वरूप भरतीय समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग कल्पित हुए। ब्राह्मणजाति ज्ञान और संस्कृति की अधिष्ठात्री थी इसलियेशोषण के सर्वाधिक आक्षेप ब्राह्मणजाति पर आरोपित किये गये।

भारतीय समृद्धि की नींव शूद्रवर्ग के श्रमप्रधानकार्य के प्रति ब्राह्मणवर्ग की हेय दृष्टि की भ्रामक कहानियों और वैदिकवांगमय से प्राप्त उद्धरणों को मिथ्यारूप से प्रचारित किया गया कि तुम्हारे ही शास्त्रों में कहा गया है कि शूद्रवर्ग तो पैरों से उत्पन्न हुआ है अतः हीनवर्ग का है। अन्य जातियों ने सदा ही उनका शोषण कया है। शोषक और शोषित वर्ग का इतिहास 500 वर्ष से पुराना नहीं है और इस व्यवस्था का खलनायकत्व भारतीय धर्मशास्त्रों को बतलाया गया। यह भी प्रसारित किया गया कि किस प्रकार ब्राह्मणों ने समाज के अन्य वर्ग का दलन किया। वर्तमान में भी दलित इतिहास में इसी प्रकार के विचार प्राप्त होते हैं ।

जैसा कि मैंने पूर्व में उल्लेख किया है कि भारतीय समाज में शासन में विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व रहा है अतः यह नही कहा जा सकता कि केवल तथाकथित उच्चजातियां ही अवसर को प्राप्त करती थी अन्य जातियों को च्युत किया गया।

दलितवर्ग के इतिहास के मनोवैज्ञानिक और वर्तमान में राजनैतिक कारण अधिक प्राप्त होते हैं । मनुष्य के पास सम्पत्ति , प्रभाव, पद आदि उसकी मनोस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन लाते हैं वह स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगता है फिर उसे अपने ही वर्ग के साधनविहीन लोगों से कुछ दूरी को बनायें रखना अपने लिये उचित प्रतीत होता है। यही मनोदशा विविध पिछडे वर्ग में भी देखने को मिलती है जब एक जाति दूसरी अपने ही समान अन्य काम करने वाली जाति की अपेक्षा स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करती है। इसी प्रकार ब्राह्मण में भी अनेक उपजातियां बन गई उनमें भी परस्पर स्वयं को श्रेष्ठ करने की होड रहती है यही परम्परा क्षत्रियों ,वैश्यों , कृषकों, लोहार, बढई, दर्जी, स्वर्णकार यहां तक कि हरिजनों में भी प्राप्त होती है । हरिजन भी रजक को अस्पृश्य मानतें हैं और इसमें कोई तार्किक कारण नहीं है। वर्तमान में सामाजिकव्यवस्था में आर्थिककारण प्रधान हो गया तथा सौहार्द का आधार अर्थ हो गया वहीं अर्थ के अभाव ने पुनः एक ही जाति में भेद कर दिया। इसलिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि धर्मशास्त्रों में वर्णित विधान ने समाज में संघर्षपूर्ण स्थिति पैदा की।

समाधान– यह एक बडा विवादित विषय है और समय–समय पर इसके समाधान के उपायों पर मन्थन किया जाता है परन्तु इसका समाधान इसके उद्गम में ही प्राप्त हो सकता है। वैश्विक परिवेश में भी यह समस्या व्यापकरूप से फैली हुई है ।इस समस्या का निदान वैदिकवांगमय में निहित है, जहाँ स्थान–स्थान पर समरसता और एकत्व का घोष प्राप्त होता है। यदि जातिव्यवस्था का विवेचन किया जायेंतो विभेदवादियों द्वारा शूद्रों को यह कहकर भ्रमितकिया गया कि तुम्हारें शास्त्र ही तुम्हें पैरों के समान हीन मानते हैं परन्तु इस कथन का समाधान यह है कि शूद्र परमात्मा के पैर माने गये हैं क्योंकि शूद्रों के अभाव में समाज की गति ही सम्भव नहीं है। द्विजातियों की गति का आधार शूद्र ही हैं–

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

पादौतु पद्येते याभ्यां शरीरं सर्वस्तथा। शूद्रसेवाप्तावकाशाः पद्यन्ते कर्मणि द्विजाः।।[25]
इसका अभिप्राय यह है कि जिसप्रकार पैरों से सम्पूर्ण शरीर का भार वहन किया जाता है उसी प्रकार शूद्रसेवा के कारण समय प्राप्त होने के कारण द्विज(अन्य जातियाँ) गति करती हैं।
धर्मशास्त्र कभी भी शूद्रों की उपेक्षा का विधान नहीं करते–
यथा तु द्विजपादानामुपेक्षा हानिदा मता । समाजपादभूतानां शूद्राणामपि साा तथा।।[26]
अर्थात् जिस प्रकार शरीर के पैरों की उपेक्षा हानिकारक है उसी प्रकार समाज के चरणभूत शूद्रों की उपेक्षा हानिकारक है।

स्पष्ट है कि भारतीय वर्णव्यवस्था का आधार पारस्परिक स्पर्धा न होकर पारस्परिक विकास है तथा जन्म से इस व्यवस्था को जोडने का आधार यह है कि अगली पीढी के सामने रोजगाार का संकट न हो तथा कार्य में उत्तरोत्तर कुशलता प्राप्त हो। भारतीयचिन्तन में वस्तुतः शूद्र अर्थव्यवस्था की नींव है इसीलिये यजुर्वेद कहता है–
नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारभ्यश्च वो नमः।।[27]
इस मन्त्र का भाव यह है कि सभी श्रमशीलजाति को नमस्कार है जो अपने श्रम और कौशल से धर्म, अर्थ और काम की सम्प्राप्तिपूर्वक मोक्षमार्ग के साधक बनते हैं। जिस शास्त्र में इस प्रकार का समन्वय और सौहार्द पद–पद पर प्राप्त होता है उस शास्त्र का विधान समाज को संघर्षशील स्थिति में नहीं डाल सकता। जिस शास्त्र के कथनों को क्षत–विक्षत करके समाज में वर्गभेद का विष सवंर्धित किया गया उस विष को उसी शास्त्र के वचनामृत से पुनः संजीवित कर **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की उदात्तभावना को जीवन्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ–

1–ऋ. 10/90
2–श्रीमद्भगवद्गीता4/13
3–द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रजांस्तु यान्। तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्।मनुस्मृति 10/20
4– सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्। वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथम्।।
मनुस्मृति–10/47
5–ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो जायते। निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते।मनुस्मृति–10/8
6–क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्।क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते। वही,10/9
7–क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। वैश्यान्मागधवैदेहो राजविप्रांगासुतौ।। वही 10/11
8–शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम्। वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः।।वही 10/12
9–ब्राह्माणादुग्रकन्यायामावृत्तो नाम जायते ।आभीरोऽम्बष्ठकन्यायायोगव्यां तु धिग्वणः।। वही 10/15
10–जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः।शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कृक्कुटकः स्मृतः।।वही,10/18
11–क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते। वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते।।वही 10/19
11/2– क्षत्रुग्रपुक्कसनां तु बिलौकोवधबधनम्। धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम्।
मनुस्मृति–10/49

© 2019 IJSRST | Volume 6, Issue 2, March-April-2019
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X | Page No 784-791

12–व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः। आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च।। वही 10/21
13–झल्लो मल्लश्च राजन्यव्रात्यान्निविरेव च। नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च।। वही10/22
14–वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च।कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च।।वही10/23
15–प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनं। सैरन्ध्रिं वागंरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे।।वही 10/32
16– मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते। नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये।।वही 10/33
17–निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्। कैवर्तमिति ये प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः।।वही 10/ 34
18–कारावरो निषादत्तु चर्मकारः प्रसूयते। वैदेहिकादन्ध्रभेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ।। वही10/36
19 मत्स्यघातो निषादानां तष्टिस्त्वायोगवस्य। मेदान्ध्रचुंचुमद्गुनामरण्यपशुहिंसनम्।। मनुस्मृति 10/48
20– चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्। आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते।।वही 10/37
21–चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः।। वही10/38
22– निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्। श्मशानगोचरं सूते बाह्यानमपि गर्हितम्।।वही 10/39
23–शुद्राविशोस्तु करणः ,अमरकोष–2/10/2
24––मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः। वही10/45
24/2 पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः कम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पह्लवचीनाः किराताः दरदाः खशाः।।वही 10/44
25– विश्वेश्वरस्मृति 1/107
26–विश्वेश्वरस्मृति1/108
27–यजुर्वेदीयरुद्र अष्टाध्यायी